****

साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में तीसरी दुनिया के देशों के लिए राष्ट्रवाद की सकारात्मक संभावनाएं अभी क्षीण नहीं हुई हैं। लेकिन राष्ट्रवाद कोई सर्वमान्य मूल्य नहीं है, कुछ प्रसंगों में यह अन्य राष्ट्रों के लिए दमनकारी बन सकता है तो वहीं इसकी परिणतियां राज्य के सर्वसत्तावादी (Totalitarian) हो जाने के रूप में भी प्रकट हो सकती हैं।

बहरहाल इसमें संदेह नहीं कि भारत के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में राष्ट्रवाद की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण और निर्णायक रही है। लेकिन उस दौर में राष्ट्रवाद की कई किस्में मौजूद थीं। प्रभावशाली धारा वह थी जो राष्ट्रवाद के नाम पर अपने समाज में मौजूद भेदभाव, शोषण और अन्याय पर पर्दा डालती थी और इस तरह उसे बनाए रखती थी। हमारे राष्ट्र का मौजूदा स्वरूप तय करने में इस धारा ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। आज जब तरह-तरह के लोग राष्ट्रवादी या हिन्दू राष्ट्रवादी होने का दावा कर रहे हैं तो उनके निहितार्थों की पहचान के लिहाज से (और राष्ट्रवाद की एक वैकल्पिक समझ निर्मित करने के लिहाज से भी) 8 जनवरी 1934 को हंस में प्रकाशित प्रेमचंद का यह लेख बेहद प्रासंगिक है। Ed. - DebateOnline

****

क्या हम वास्तव में राष्ट्रवादी हैं ?

टके-पंथी पुजारी, पुरोहित और पंडे हिन्दू जाति के कलंक हैं

प्रेमचंद

यह तो हम पहले भी जानते थे और अब भी जानते हैं कि साधारण भारतवासी राष्ट्रीयता का अर्थ नहीं समझता, और यह भावना जिस जागृति और मानसिक उदारता से उत्पन्न होती है, वह अभी हममें बहुत थोड़े आदमियों में आयी है। लेकिन इतना जरूर समझते थे कि जो पत्रों के सम्पादक हैं, राष्ट्रीयता पर लम्बे-लम्बे लेख लिखते हैं और राष्ट्रीयता की वेदी पर बलिदान होने वालों की तारीफों के पुल बांधते हैं, उनमें जरूर यह जागृति आ गई है और वह जात-पांत की बेड़ियों से मुक्त हो चुके हैं, लेकिन अभी हाल में 'भारत' में एक लेख देखकर हमारी आंखे खुल गईं और यह अप्रिय अनुभव हुआ कि हम अभी तक केवल मुंह से राष्ट्र- राष्ट्र का गुल मचाते हैं, हमारे दिलों में अभी वही जाति-भेद का अंधकार छाया हुआ है। और यह कौन नहीं जानता कि जाति भेद और राष्ट्रीयता दोनों में अमृत और विष का अन्तर है। यह लेख किन्हीं 'निर्मल' महाशय का है और यदि यह वही 'निर्मल' हैं, जिन्हें श्रीयुत ज्योतिप्रसाद जी 'निर्मल' के नाम से हम जानते हैं, तो शायद वह ब्राह्मण हैं। हम अब तक उन्हें राष्ट्रवादी समझते थे, पर 'भारत' में उनका यह लेख देखकर हमारा विचार बदल गया, जिसका हमें दुख है। हमें ज्ञात हुआ कि वह अब भी उन पुजारियों का, पुरोहितों का और जनेऊधारी लुटेरों का हिन्दू समाज पर प्रभुत्व बनाए रखना चाहते हैं जिन्हें वह ब्राह्मण कहते हैं पर हम उन्हें ब्राह्मण क्या, ब्राह्मण के पांव का धूल भी नहीं

समझते। 'निर्मल' की शिकायत है कि हमने अपनी तीन-चौथाई कहानियों में ब्राह्मणों को काले रंगों में चित्रित करके अपनी संकीर्णता का परिचय दिया है जो हमारी रचनाओं पर अमिट कलंक है। हम कहते हैं कि अगर हममें इतनी शक्ति होती, तो हम अपना सारा जीवन हिन्दू-जाति को पुरोहितों, पुजारियों, पंडों और धर्मोपजीवी कीटाणुओं से मुक्त कराने में अर्पण कर देते। हिन्दू-जाति का सबसे घृणित कोढ़, सबसे लज्जाजनक कलंक यही टकेपंथी दल हैं, जो एक विशाल जोंक की भांति उसका खून चूस रहा है, और हमारी राष्ट्रीयता के मार्ग में यही सबसे बड़ी बाधा है। राष्ट्रीयता की पहली शर्त है, समाज में साम्य-भाव का दृढ़ होना। इसके बिना राष्ट्रीयता की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जब तक यहां एक दल, समाज की भक्ति, श्रद्धा, अज्ञान और अंधविश्वास से अपना उल्लू सीधा करने के लिए बना रहेगा, तब तक हिन्दू समाज कभी सचेत न होगा। और यह दल दस-पांच लाख व्यक्तियों का नहीं है, असंख्य है। उसका उद्यम यही है कि वह हिन्दू जाति को अज्ञान की बेड़ियों में जकड़ रखे, जिससे वह जरा भी चूं न कर सके। मानो आसुरी शक्तियों ने अंधकार और अज्ञान का प्रचार करने के लिए स्वयंसेवकों की यह अनगिनत सेना नियत कर रखी है।

अगर हिन्दू समाज को पृथ्वी से मिट नहीं जाना है, तो उसे इस अन्धकार-शासन को मिटाना होगा। हम नहीं समझते, आज कोई भी विचारवान हिन्दू ऐसा है, जो इस टके पंथी दल को चिरायु देखना चाहता हो, सिवाय उन लोगों के जो स्वयं उस दल में हैं और चखौतियां कर रहे हैं। निर्मल, खुद शायद उसी टकेपंथी समाज के चौधरी हैं, वरना उन्हें टकेपंथियों के प्रति वकालत करने की जरूरत क्यों होती? वह और उनके समान विचारवाले उनके अन्य भाई शायद आज भी हिन्दू समाज को अंधविश्वास से निकलने नहीं देना चाहते, वह राष्ट्रीयता की हांक लगाकर भी भावी हिन्दू समाज को पुरोहितों और पुजारियों ही का शिकार बनाए रखना चाहते हैं। मगर हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि हिन्दू-समाज उनके प्रयत्नों और सिरतोड़ कोशिशों के बावजूद अब आंखे खोलने लगा है और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जिन कहानियों को 'निर्मल' जी ब्राह्मण-द्रोही बताते हैं, वह सब उन्हीं पत्रिकाओं में छपी थी, जिनके सम्पादक स्वयं ब्राह्मण थे। मालूम नहीं 'निर्मल' जी 'वर्तमान' के सम्पादक श्री रमाशंकर अवस्थी, 'सरस्वती' के सम्पादक श्री देवीदत्त शुक्ल, 'माधुरी' के सम्पादक पं. रूपनारायण पांडे, 'विशाल भारत' के सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी आदि सज्जनों को ब्राह्मण समझते हैं या नहीं, पर इन सज्जनों ने उन कहानियों को छापते समय जरा भी आपत्ति न की थी। वे उन कहानियों को आपत्तिजनक समझते, तो कदापि न छापते। हम उनका गला तो दबा न सकते थे। मुरौवत में पड़कर भी आदमी अपने धार्मिक विश्वास को तो नहीं त्याग सकता। ये कहानियां उन महानुभावों ने इसीलिए छापी, कि वे भी हिन्दू समाज को टके पंथियों के जाल से निकालना चाहते हैं, वे ब्राह्मण होते हुए भी इस ब्राह्मण जाति को बदनाम करनेवाले जीवों का समाज पर प्रभुत्व नहीं देखना चाहते। हमारा खयाल है कि टकेपंथियों से जितनी लज्जा उन्हें आती होगी, उतनी दूसरे समुदायों को नहीं आ सकती, क्योंकि यह धर्मोपजीवी दल अपने को ब्राह्मण कहता है। हम कायस्थ कुल में उत्पन्न हुए हैं और अभी तक उस संस्कार को न मिटा सकने के कारण किसी कायस्थ को चोरी करते या रिश्वत लेते देखकर लज्जित होते हैं। ब्राह्मण क्या इसे पसन्द कर सकता है, कि उसी समुदाय के असंख्य प्राणी भीख मांगकर, भोले-भाले हिन्दुओं को ठगकर,

बात-बात में पैसे वसूल करके, निर्लज्जता के साथ अपने धर्मात्मापन का ढोंग करते फिरे। यह जीवन व्यवसाय उन्हीं को पसन्द आ सकता है, जो खुद उसमें लिप्त हैं और वह भी उसी वक्त तक, जब तक कि उनकी अध स्वार्थ भावना प्रचंड है और भीतर की आंखें बन्द हैं। आंखें खुलते ही वह उस व्यवसाय और उस जीवन से घृणा करने लगेंगे। हम ऐसे सज्जनों को जानते हैं, जो पुरोहितकुल में पैदा हुए, पर शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद उन्हें वह टकापंथपन इतना जघन्य जान पड़ा कि उन्होंने लाखों रुपए साल की आमदनी पर लात मार स्कूल में अध्यापक होना स्वीकार कर लिया। आज भी कुलीन ब्राह्मण पुरोहितपन और पुजारीपन को त्याज्य समझता है और किसी दशा में भी यह निकृष्ट जीवन अंगीकार न करेगा। ब्राह्मण वह है, जो निस्पृह हो, त्यागी हो और सत्यवादी हो। सच्चे ब्राह्मण महात्मा गांधी, म.मालवीय जी हैं, नेहरू हैं, स.पटेल हैं, स्वामी श्रद्धानन्द हैं। वह नहीं जो प्रातःकाल आपके द्वार पर करताल बजाते हुए - 'निर्मलपुत्र देहि भगवान' की हांक लगाने लगते हैं, या गनेश-पूजा और गौरी पूजा और अल्लम-गल्लम पूजा पर यजमानों से पैसे रखवाते हैं, या गंगा में स्नान करनेवालों से दक्षिणा वसूल करते हैं, या विद्वाान होकर ठाकुर जी और ठकुराइन जी के श्रृंगार में अपना कौशल दिखाते हैं, या मन्दिरों में मखमली गाव तकिये लगाये वेश्याओं का नृत्य देखकर भगवान से लौ लगाते हैं।

हिन्दू बालक जब से धरती पर आता है और जब तक वह धरती से प्रस्थान नहीं कर जाता, इसी अंधविश्वास और अज्ञान के चक्कर में सम्मोहित पड़ा रहता है। और नाना प्रकार के दृष्टांतों से मनगढ़ंत किस्से कहानियों से, पुण्य और धर्म के गोरख-धंधों से, स्वर्ग और नरक की मिथ्या कल्पनाओं से, वह उपजीवी दल उनकी सम्मोहनावस्था को बनाए रखता है। और उनकी वकालत करते हैं हमारे कुशल पत्रकार 'निर्मल' जी, जो राष्ट्रवादी हैं। राष्ट्रवाद ऐसे उपजीवी समाज को घातक समझता है और समाजवाद में तो उसके लिए स्थान ही नहीं। और हम जिस राष्ट्रीयता का स्वप्न देख रहे हैं उसमें तो जन्मगत वर्णों की गंध तक न होगी, वह हमारे श्रमिकों और किसानों का साम्राज्य होगा, जिसमें न कोई ब्राह्मण होगा, न हरिजन, न कायस्थ, न क्षत्रिय। उसमें सभी भारतवासी होंगे, सभी ब्राह्मण होंगे, या सभी हरिजन होंगे।

कुछ मित्रों की यह राय हो सकती है कि माना टकेपंथी समाज निकृष्ट है, त्याज्य है, पाखंडी है, लेकिन तुम उसकी निन्दा क्यों करते हो, उसके प्रति घृणा क्यों फैलाते हो, उसके प्रति प्रेम और सहानुभूति क्यों नहीं दिखलाते, घृणा तो उसे और भी दुराग्रही बना देती है और फिर उसके सुधार की संभावना भी नहीं रहती। इसके उत्तर में हमारा यही नम्र निवेदन है कि हमें किसी व्यक्ति या समाज से कोई द्वेष नहीं, हम अगर टकेपंथीपन का उपहास करते हैं, तो जहां हमारा एक उद्देश्य यह होता है कि समाज में से ऊंच-नीच, पवित्र-अपवित्र का ढोंग मिटावें, वहां दूसरा उद्देश्य यह भी होता है कि टकेपंथियों के सामने उनका वास्तविक और कुछ अतिरंजित चित्र रखें, जिसमें उन्हें अपने व्यवसाय, अपनी धूर्तता, अपने पाखंड से घृणा और लज्जा उत्पन्न हो, और वे उसका परित्याग कर ईमानदारी और सफाई की जिन्दगी बसर करें और अंधकार की जगह प्रकाश के स्वयंसेवक बन जायें। 'ब्रह्मभोज' और 'सत्याग्रह' नामक कहानियों ही को देखिए, जिन पर 'निर्मल' जी को आपत्ति है। उन्हें पढ़ कर क्या यह इच्छा होती है कि चौबे जी या पंडित जी का अहित किया जाय? हमने चेष्टा की है कि पाठक के मन में उनके प्रति द्वेष

न उत्पन्न हो, हां परिहास-द्वारा उनकी मनोवृत्ति दिखायी है। ऐसे चौबों को देखना हो, तो काशी या वृन्दावन में देखिए और ऐसे पंडितों को देखना हो तो, वर्णाश्रम स्वराज्य संघ में चले जाइये, और निर्मल जी पहले ही उस धर्मात्मा दल में नहीं जा मिले हैं, तो अब उन्हें चटपट उस दल में जा मिलना चाहिए, क्योंकि वहां उन्हीं की मनोवृत्ति के महानुभाव मिलेंगे। और वहां उन्हें मोटेराम जी के बहुत से भाई-बन्धु मिल जायेंगे, जो उनसे कहीं बड़े सत्याग्रही होंगे। हमने कभी इस समुदाय की पोल खोलने की चेष्टा नहीं की, केवल मीठी चुटकियों से और फुसफुसे परिहास से काम लिया, हालांकि जरूरत थी बर्नाडशा जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति की, जो घन से चोट लगाता है।

निर्मल जी को इस बात की बड़ी फिक्र है कि आज के पचास साल बाद के लोग जो हमारी रचनाएं पढ़ेंगे, उनके सामने ब्राह्मण समाज का कैसा चित्र होगा और वे हिन्दू समाज से कितने विरक्त हो जाएंगे। हम पूछते हैं कि महात्मा गांधी के हरिजन आन्दोलन को लोग आज के एक हजार साल के बाद क्या समझेंगे? यह कि हरिजनों को ऊंची जाति के हिन्दुओं ने कुचल रखा था। हमारे लेखों से भी आज के पचास साल बाद लोग यही समझेंगे कि उस समय हिन्दू समाज में इसी तरह के पुजारियों, पुरोहितों, पंडों, पाखंडियों और टकेपंथियों का राज था और कुछ लोग उनके इस राज को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न कर रहे थे। निर्मल जी इस समुदाय को ब्राह्मण कहें, हम नहीं कह सकते। हम तो उसे पाखंडी समाज कहते हैं, जो अब निर्लज्जता की पराकाष्ठा तक पहुंच चुका है। ऐतिहासिक सत्य चुप-चुप करने से नहीं दब सकता। साहित्य अपने समय का इतिहास होता है, इतिहास से कहीं अधिक सत्य। इसमें शर्माने की बात अवश्य है कि हमारा हिन्दू समाज क्यों ऐसा गिरा हुआ है और क्यों आंखें बंद करके धूतों को अपना पेशवा मान रहा है और क्यों हमारी जाति का एक अंग पाखंड को अपनी जीविका का साधन बनाए हुए है, लेकिन केवल शर्माने से तो काम नहीं चलता। इस अधोगति की दशा सुधार करना है। इसके प्रति घृणा फैलाइये, प्रेम फैलाइये, उपहास कीजिए या निन्दा कीजिए सब जायज है और केवल हिन्दू-समाज के दृष्टिकोण से ही नहीं जायज है, उस समुदाय के दृष्टिकोण से भी जायज है, जो मुफ्तखोरी, पाखंड और अंधविश्वास में अपनी आत्मा का पतन कर रहा है और अपने साथ हिन्दू-जाति को डुबोए डालता है। हमने अपने गल्पों में इस पाखंडी समुदाय का यथार्थ रूप नहीं दिखाया है, वह उससे कहीं पतित है, उसकी सच्ची दशा हम लिखें, तो शायद निर्मल जी को तो न आश्चर्य होगा, क्योंकि वह उसी समुदाय के एक व्यक्ति हैं, लेकिन हिन्दू समाज की जरूर आंखें खुल जाएंगी, मगर यह हमारी कमजोरी है कि बहुत सी बातें जानते हुए भी उनके लिखने का साहस नहीं रखते और अपने प्राणों का भय भी है, क्योंकि यह समुदाय कुछ भी कर सकता है। शायद इस साम्प्रदायिक प्रसंग को इसीलिए उठाया भी जा रहा है कि पंडों और पुरोहितों को हमारे विरुद्ध उत्तेजित किया जाय।

निर्मल जी ने हमें 'आदर्शवाद' और कला के विषय में भी कुछ उपदेश देने की कृपा की है, पर हम यह उपदेश ऐसों से ले चुके हैं, जो उनसे कहीं ऊंचे हैं। आदर्शवाद इसे नहीं कहते कि अपने समाज में जो बुराइयां हों, उनके सुधार के बदले उनपर परदा डालने की चेष्टा की जाय, या समाज को एक लुटेरे समुदाय के हाथों लुटते देखकर जबान बन्द कर ली जाय। आदर्शवाद का जीता-जागता उदाहरण हरिजन-आन्दोलन हमारी आंखों के सामने है। निर्मल जी जबान में तो इस आन्दोलन के विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं रखते, लेकिन उनके दिल में

घुसकर देखा जाय तो मंदिरों का खुलना और मन्दिरों के ठेकेदारों के प्रभुत्व का मिटना, उन्हें जहर ही लग रहा होगा, मगर बेचारे मजबूर हैं, क्या करें?

निर्मल जी हमें ब्राह्मण द्वेषी बता कर संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने हमें हिन्दू द्रोही भी सिद्ध किया है, क्योंकि हमने अपनी रचनाओं में मुसलमानों को अच्छे रूप में दिखाया है। तो क्या आप चाहते हैं, हम मुसलमानों को भी उसी तरह चित्रित करें, जिस तरह पुरोहितों और पाखंडियों को करते हैं? हमारी समझ में मुसलमानों से हिन्दू जाति को उसकी शतांश हानि नहीं पहुंची है, जितनी इन पाखंडियों के हाथों पहुंची और पहुंच रही है। मुसलमान हिन्दू को अपना शिकार नहीं समझता, उसकी जेब से धोखा देकर और अश्रद्धा का जादू फैलाकर कुछ ऐठने की फिक्र नहीं करता। फिर भी मुसलमानों को मुझसे शिकायत है कि मैंने उनका विकृत रूप खींचा है। हम ऐसे मुसलमान मित्रों के खत दिखा सकते हैं, जिन्होंने हमारी कहानियों में मुसलमानों के प्रति अन्याय दिखाया है। हमारा आदर्श सदैव से यह रहा है कि जहां धूर्तता और पाखंड और सबलों द्वारा निर्बलों पर अत्याचार देखो, उसको समाज के सामने रखो, चाहे हिन्दू हो, पंडित हो, बाबू हो, मुसलमान हो, या कोई हो। इसलिए हमारी कहानियों में आपको पदाधिकारी, महाजन, वकील और पुजारी गरीबों का खून चूसते हुए मिलेंगे, और गरीब किसान, मजदूर, अछूत और दरिद्र उनके आघात सहकर भी अपने धर्म और मनुष्यता को हाथ से न जाने देंगे, क्योंकि हमने उन्हीं में सबसे ज्यादा सच्चाई और सेवा भाव पाया है। और यह हमारा दृढ़ विश्वास है कि जब तक यह सामुदायिकता और साम्प्रदायिकता और यह अंधविश्वास हम में से दूर न होगा, जब तक समाज को पाखंड से मुक्त न कर लेंगे तब तक हमारा उद्धार न होगा। हमारा स्वराज्य केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करना नहीं है, बल्कि सामाजिक जुए से भी, इस पाखंडी जुए से भी, जो विदेशी शासन से कहीं अधिक घातक है, और हमें आश्चर्य होता है कि निर्मल जी और उनकी मनोवृत्ति के अन्य सज्जन कैसे इस पुरोहिती शासन का समर्थन कर सकते हैं। उन्हें खुद इस पुरोहितपन को मिटाना चाहिए, क्योंकि वह राष्ट्रवादी हैं। अगर कोई ब्राह्मण, कायस्थों के करारदाद की, उनके मदिरा सेवन की, या उनकी अन्य बुराइयों की निन्दा करे, तो मुझे जरा भी बुरा न लगेगा। कोई हमारी बुराई दिखाए और हमदर्दी से दिखाए, तो हमें बुरा लगने या दांत किटकिटाने का कोई कारण नहीं हो सकता। मिस मेयो ने जो बुराइयां दिखाई थीं उनमें उसका दूषित मनोभाव था। वह भारतीयों को स्वराज्य के अयोग्य सिद्ध करने के लिए प्रमाण खोज रही थी। क्या निर्मल जी मुझे भी ब्राह्मण-द्रोही, हिन्दू-द्रोही की तरह स्वराज्य-द्रोही भी समझते हैं।

अन्त में मैं अपने मित्र निर्मल जी से बड़ी नम्रता के साथ निवेदन करुंगा कि पुरोहितों के प्रभुत्व के दिन अब बहुत थोड़े रह गए हैं और समाज और राष्ट्र की भलाई इसी में है कि जाति से यह भेद-भाव, यह एकागी प्रभुत्व यह खून चूसने की प्रवृत्ति मिटायी जाय, क्योंकि जैसा हम पहले कह चुके हैं, राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्णव्यवस्था, ऊंच-नीच के भेद और धार्मिक पाखंड की जड़ खोदना है। इस तरह के लेखों से आपको आपके पुरोहित भाई चाहे अपना हीरो समझें और मंदिर के महन्तों और पुजारियों की आप पर कृपा हो जाय, लेकिन राष्ट्रीयता को हानि पहुंचती है और आप राष्ट्र-प्रेमियों की दृष्टि में गिर जाते हैं। आप यह ब्राह्मण समुदाय की सेवा नहीं, उसका अपमान कर रहे हैं।